ओ३म्

**‘ईश्वर व जीवात्मा के अस्तित्व के प्रमाण’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 बच्चा जब संसार में जन्म लेता है तो वह न तो अपनी भावना को बोल कर कह सकता है और न अपने आप उठ-बैठ सकता है, चलना फिरना तो उसका कई महीनों व एक वर्ष का हो जाने पर आरम्भ होता है। माता-पिता बच्चे को बोलना सिखाते हैं, उठना-बैठना व चलना-फिरना सिखाते हैं। इस परम्परा पर दृष्टि डाले तो हम सृष्टि के आरम्भ में पहुंच जाते हैं। हमारे आदि पूर्वजों के माता पिता नहीं थे। आदि का अर्थ ही प्रारम्भ की अवस्था है। वैदिक साहित्य इसका उत्तर देता है कि आदि सृष्टि में युवा स्त्री व पुरूष पैदा हुए थे। यह सृष्टि अमैथुनी सृष्टि थी जिसका अर्थ होता कि बिना माता-पिता की सृष्टि। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन्हें फिर किसने जन्म दिया? इसका उत्तर है कि माता पिता के न होने से यह जन्म इस संसार को बनाने व चलाने वाले “ईश्वर” ने दिया था। अब हमारे नास्तिक बन्धु कहेंगे कि सिद्ध करो कि ईश्वर है? हम पूछते हैं कि हम मान लेते हैं कि ईश्वर नहीं है। नास्तिक बन्धु हमें बतायें और सिद्ध करें कि ईश्वर के न होने पर यह सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथिवी, गृह व उपग्रह व प्राणिजगत आदि संसार कब, किससे व कैसे बना? कौन इसे चला रहा है? इसका उत्तर न ईश्वर को न मानने वालों के पास है और न वैज्ञानिकों के पास ही। इसका उत्तर न होना ही ईश्वर के होने का प्रमाण है क्योंकि ईश्वर के अतिरिक्त इसका कोई उत्तर है ही नहीं। कोई भी उत्पत्ति किसी न किसी उत्पत्तिकर्ता के द्वारा ही होती है। यदि उत्पत्तिकर्ता दिखाई न दें तो उसे ढूढंना चाहिये न कि उसके अस्तित्व से इनकार करना। हमारे सामने भी यह प्रश्न आया कि ईश्वर दिखाई तो देता नहीं फिर उसे क्यों माना जाये? हमने स्वयं से तर्क किया तो उत्तर मिला कि यदि रचना है तो उसका रचयिता होना आवश्यक है।

**मनमोहन कुमार आर्य**

दूसरा प्रश्न कि यदि वह है तो दिखाई क्यों नहीं देता? इसका उत्तर यह मिला कि अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ आंखों से दिखाई नहीं देते परन्तु उनका अस्तित्व होता है। आजकल माइक्रोस्कोप से ऐसे जीवाणु व सूक्ष्म कीट आदि तथा रक्त के सूक्ष्म कणों को देखा जाता है जिसको हमारी आंखे देखने में अपनी असमर्थता प्रकट करती है। अतः ईश्वर सूक्ष्म है इस सम्भावना का ज्ञान इन तर्कों से होता है। अब वह सत्ता संसार में रहती कहा हैं? इसका उत्तर भी तर्क से यह प्राप्त हुआ कि यह ब्रह्माण्ड अनन्त है। इसका न कोई ओर है न छोर। ब्रह्माण्ड में अनेक सूर्य व सौर्य मण्डल होने और इनकी संख्या अनन्त होने के प्रमाण हमारे वैज्ञानिकों ने अपनी बहुत ही आधुनिक दूरबीनों की सहायता व विवेचन से प्राप्त किये हैं। रचना जहां होती है वहां रचयिता का होना आवश्यक होता है। इस जानकारी पर तर्क करने से सिद्ध हुआ कि ईश्वर सर्वव्यापक, निराकार, सर्वदेशी, सर्वातिसूक्ष्म व सर्वान्तर्यामी है। अब इस प्रश्न पर विचार किया गया कि ईश्वर यदि है तो वह उत्पन्न कैसे हुआ, तर्क ने उत्तर दिया कि वह अनादि, अजन्मा और नित्य है। उत्पन्न सत्ता को उत्पत्तिकर्ता चाहिये और उत्पन्न सत्ता अमर या अविनाशी या नाशरहित नहीं हो सकती। यदि ईश्वर को उत्पत्तिधर्मा मानते हैं तो उसका नाश व मृत्यु भी माननी पड़ेगी, फिर एक अन्य उससे बड़े ईश्वर को मानना होगा जिसने उस ईश्वर को उत्पन्न किया था। और इस प्रकार से मानने से अनावस्था दोष आता है जिसका समाधान एक अनादि, अनुत्पन्न, अविनाशी, अनन्त अर्थात् जन्म व मृत्यु से रहित सत्ता को मानने से होता है। और विचार किया गया तो ज्ञात हुआ है कि वह सत्य, चेतन तत्व व आनन्द स्वरूपवान होना ही सम्भव है। यदि ऐसा न होगा तो ईश्वर कुछ कर ही न सकेगा। अब ईश्वर का स्वरूप निर्धारित हो जाने पर इसको सिद्ध करना है तो इसका सरल उपाय है कि आंखे बन्द करो और इन सब तर्कों व इसके विपरीत तर्कों का चिन्तन करो तो हमारी आत्मा में सत्य ज्ञान प्रकट हो जायेगा और वह वही होता है जिसे पूर्व तर्क के आधारित किया गया है। यहां इतना बताना आवश्यक है कि ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में यही स्वरूप हमारे वेदों, वैदिक साहित्य, दर्शन, उपनिषद, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में वर्णित किया गया है। हम वेदों की एक बात का यहां और वर्णन करना चाहेंगे जिसमें कहा गया है कि यह अनन्त ब्रह्माण्ड ईश्वर के सर्वव्यापक आकार का 1/3 भाग ही है। ईश्वर के इसके अतिरिक्त 2/3 भाग में भी ईश्वर अपने आनन्द स्वरूप में स्थित है। हमें लगता वहां यदि किसी की पहुंच हो सकती है तो वह मोक्ष प्राप्त करने वाली जीवात्माओं की हो सकती है।

**स्वाध्याय और उपासना से पूर्वजन्मों का ज्ञान**

जब मनुष्य को ज्ञान होता है तब वह ठीक-ठीक जानता है कि मैंने अनेक वार जन्म मरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हजारों गर्भाशयों का सेवन (निवास) किया है। अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया और अनेक माता-पिता और सृहृदों को देखा है।

**-महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्य**

**भूमिका के पुनर्जन्म अध्याय से।**

अब दूसरा प्रमाण है कि सृष्टि की आदि में जब युवा स्त्री व पुरूष उत्पन्न हुए तो उनको ज्ञान की आवश्यकता थी। ज्ञान भाषा में निहित होता है अतः भाषा की भी आवश्यकता थी अन्यथा आदि स्त्री-पुरूषों का जीवन आगे चल ही नहीं सकता था। यहां फिर केवल ईश्वर की शरण में जाना पड़ता है और तर्क से उत्तर मिलता है कि ज्ञान व भाषा सिखाने व देने वाला यदि कोई है तो वह सृष्टिकर्ता ईश्वर ही है। अब यदि ऐसा है तो उसने जो ज्ञान दिया उसका प्राचीन साहित्य में उल्लेख होना चाहिये। उसका उल्लेख प्राचीनतम ब्राह्मण ग्रन्थों, मनुस्मृति, दर्शन ग्रन्थों व उपनषिदों आदि में मिलता है। यह सब एक मत से बताते हैं कि ईश्वर प्रदत्त ज्ञान वेद है। वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानने की परम्परा आज तक चली आ रही है। आधुनिक काल में इसका प्रमाण पुरस्सर उत्तर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने वार्तालाप, उपदेशों, शास्त्रार्थों एवं सत्यार्थ प्रकाश व ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका आदि ग्रन्थों में दिया है जिसका अनुसंधान एवं विस्तार उनके अनुयायियों ने विगत 140 वर्षों में किया है। वेद का ज्ञान व उसकी भाषा का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि वेद कोई मानवी कृति नही हो सकती, इसका ज्ञान प्रबुद्ध अध्येता को सहज ही जाता है। यहां हम यह भी बताना चाहते हैं कि आरम्भ में मनुष्य भाषा बना नहीं सकता। यदि आपके पास एक भाषा हो तो उसमें अपभ्रंस होकर कुछ मिलती-जुलती भाषा व भाषायें तो बनाई जा सकती हैं परन्तु सर्वप्राचीन भाषा केवल ईश्वर द्वारा ही दी जाती है। यदि वह भाषा न दे तो मनुष्य कुछ भी कर ले, भाषा नहीं बना सकता। इसका उत्तर यह भी है कि जिस प्रकार शरीर के सभी अंग ईश्वर के बनाये हुए हैं। आज विज्ञान उन्नति के चरम पर पहुंच गया है पर क्या एक किसी वैज्ञानिक ने मनुष्य की एक छोटी सी आंख, नाक, कान व जिह्वा अथवा कोई अंग बना पाया है, इसका उत्तर है कि नहीं। जो ईश्वरीय रचनायें हैं वह ईश्वर ही करता है। मनुष्य वही कर सकता है जो उसके लिए सम्भव है। पहली अर्थात् सृष्टि की आदि भाषा बनाना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। हम चाहते हैं कि यदि किसी बन्धु को हमारी बात स्वीकार न करे तो वह चिन्तन करे और फिर अपने निष्कर्षों को भाषाविदों व ज्ञानविदों से शेयर करें और उनको सहमत कर लें, उसका सिद्धान्त सारी दुनियां में प्रचलित हो जायेगा। यदि आज भाषाविदों को भाषा की उत्पत्ति का निभ्र्रान्त उत्तर नहीं मिल रहा है तो इसका कारण यह है कि इसका उत्तर जो हमने पूर्व दिया है वही है और दूसरा कोई नहीं है। वैज्ञानिकों को कुछ समय बाद या भविष्य में कभी न कभी इस सिद्धान्त को सर्वसम्मति से स्वीकार करना ही होगा। यहां हम वेदों के आधार पर ईश्वर का संक्षिप्त स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं जो स्वामी दयानन्द ने वेदों का गहन अध्ययन, योगाभ्यास व समाधि सिद्ध करने के बाद प्राप्त किया। वह है कि ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, सर्वज्ञ, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। वही सब मनुष्यों के उपासना के योग्य है अन्य कोई जन्मधारी मनुष्य, महापुरूष या अवतार उपासना के योग्य नहीं है। उन्होंने यह भी बताया कि अजन्मा होने से वह कभी अवतार या मनुष्य के रूप में जन्म न लेता है और न ले सकता है।

ईश्वर के साक्षात्कार के विषय में हम यह भी कहना चाहते हैं कि हमारे उपनिषदों के ऋषि ईश्वर का साक्षात्कार किये हुए उच्च कोटि के महापुरूष थे। मुण्डकोपनिषद् के ऋषि समाधि में ईश्वर की प्राप्ति का उल्लेख कर कहते हैं कि **“भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे।।“** अर्थात् समाधि में ईश्वर-साक्षात्कार की अवस्था सिद्ध हो जाने पर जीवात्मा के हृदय की अविद्या-अज्ञानरूपी गांठ कट जाती है और सब संशय छिन्न होकर उसके दुष्ट व पाप कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं। तभी आत्मा के भीतर और बाहर व्यापक हो रहा परमात्मा में वह योगी वा उसका जीवात्मा निवास करता है और आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है।

मानव शरीर में ईश्वर की प्राप्ति के स्थान के विषय में समाधि को सिद्ध किए हुए महर्षि दयानन्द अपने ग्रन्थ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के उपासना विषय में लिखते हैं कि कण्ठ के नीचे और उदर से ऊपर तथा दोनों स्तनों के बीच में जो हृदय देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाश रूप एक स्थान है और उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने (अर्थात् योग रीति से उपासना करने) से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है।

ईश्वर को जान लेने के बाद अब जीवात्मा के अस्तित्व व स्वरूप पर विचार करते हैं। जीवात्मा भी एक स्वतन्त्र सत्ता है। यह ईश्वर का अंश नहीं है। हां, इसका कुछ स्वरूप व गुण ईश्वर के समान व कुछ विपरीत है। यह सत्य, चित्त, आकार रहित, अल्पज्ञ, एकदेशी, जन्म-मरण धर्मा, कर्मों का कर्ता व उसके फलों को सुख व दुःख के रूप में भोक्ता आदि स्वभाव, स्वरूप व गुणों वाला है। ईश्वर ही इसे माता-पिता के माध्यम से मनुष्यादि योनियों में जन्म देता है और वृद्धावस्था व आयु पूरी होने पर मृत्यु के होने के अवसर पर शरीर से इसका सम्बन्ध विच्छेद करता है। इसको जानने व समझने के लिए भी सत्यार्थ प्रकाश एक सर्वोत्तम ग्रन्थ है जिसका सभी को अध्ययन करना चाहिये जिससे धार्मिक व आध्यात्मिक व अन्य सभी प्रकार के भ्रम व भ्रान्तियां दूर हो सकें। इस ग्रन्थ के मुकाबले में संसार में कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है। इसको पढ़कर ही इसकी महत्ता का अनुमान किया जा सकता है। इन्हीं विचारों को यदि स्वयं पर लागू करें तो हम यह कहेंगे कि मैं वस्तुतः एक जीवात्मा हूं। मेरा जन्म कभी नहीं हुआ है। मैं हमेशा से हूं और हमेशा रहूंगा। ईश्वर की कृपा से मुझे कर्मानुसार बार-बार जन्म मिलेगा, आयु पूरी होने पर मेरी मृत्यु हेाती रहेगी। प्रारब्ध के अनुसार अनेकानेक योनियों में मेरा जन्म होता रहेगा। मेरे अब तक असंख्य जन्म हो चुके हैं। मैं संसार में विद्यमान सभी योनियों में कई-कई बार जन्म लेकर कर्मों का भोग कर चुका हूं। मैं कई बार मोक्ष में भी रहा हूं। कई बार पूर्व में मैं ईश्वर का साक्षात्कार कर चुका हूं। अनेकानेक बार साधू-संन्यासी, योगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र भी रहा हूं एवं इनसे निकृष्ट क्षूद्र प्राणी भी। यह सब कर्मों का खेल है। इसे समझना है और आसक्तियों का त्याग कर ज्ञान की वृ़िद्ध करके सत्कर्मों को करके, ईश्वर उपासना से समाधि को सिद्ध करना है जिससे ईश्वर का साक्षात्कार हो सके। ऐसा करके मेरा मोक्ष हो सकेगा। मोक्ष की अवस्था ब्रह्माण्ड के सभी जीवों की सबसे अधिक उन्नत अवस्था है। सभी को इसके लिए प्रयास करने चाहिये। मत-मतान्तरों के चक्र से मुक्त होकर सत्य ज्ञान की खोज करनी चाहिये और इस प्रकार से जाने गये सत्य मार्ग पर चलना चाहिये जो उन्नति की ओर ले जाता है। यदि हम मत-मतान्तरों की अन्धविश्वासों व अविद्याजन्य कर्म व उपासना पद्धतियों में फंसे रहे तो हमारा यह मानव जीवन व्यर्थ हो जायेगा और इस जन्म के बाद अगले जन्म में हमारा भविष्य निश्चय ही दुःखद होगा। सत्य पर चल कर हमारा यह जीवन भी उन्नत होता है व भावी जीवन भी। अतः हमें सत्य को जानना और उसको धारण कर सत्य-धर्म का ही आचरण करना है। यही वास्तविक मनुष्य धर्म है। वेद धर्म का साक्षात् रूप व ग्रन्थ हैं और इनकी शिक्षाओं के अनुरूप आचरण ही समस्त मानव जाति का कर्तव्य है। हम समझते है हमारे इस लेख से ईश्वर व जीवात्मा के अस्तित्व को न मानने वाले बन्धुओं की आस्था व मिथ्या विश्वास का समाधान होगा एवं इस संक्षिप्त विवेचन से पाठको को लाभ होगा।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**